विषय	हिन्दी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	P14 : पाश्चात्य काव्यशास्त्र
इकाई सं. एवं शीर्षक	M8: लोंजाइनस : काव्य में उदात्त
इकाई टैग	HND_P14_M8
प्रधान निरीक्षक	प्रो. रामबक्ष जाट
प्रश्नपत्र-संयोजक	प्रो. अरुण होता
इकाई-लेखक	प्रो. रवि श्रीवास्तव
इकाई समीक्षक	प्रो. एस.सी.कुमार
भाषा सम्पादक	प्रो. देवशंकर नवीन

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. लोंजाइनस का परिचय
4. 'पेरि इप्सुस'
5. उदात्त' अर्थ और अवधारणा
6. उदात्त के स्रोत

6.1. महान विचार

6.2. प्रबल अभ्यांतर भाव

6.3. अलंकार तथा छंद

6.4. भव्य शब्द-शिल्प विधान

6.5. प्रभावपूर्ण गरिमा एवं श्रेष्ठ रचना विधान

7. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप

- यूनानी दार्शनिक लोंजाइनस के बारे में जान सकेंगे।
- उदात्त के अर्थ और अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- काव्य में उदात्त के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- उदात्त के स्त्रोतों से परिचित हो सकेंगे।

2. प्रस्तावना

प्लेटो और अरस्तू के बाद यूनानी काव्यशास्त्र में लोंजाइनस का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनका समय ईसा की प्रथम या तृतीय सदी के मध्य माना गया है। लोंजाइनस के नाम से जो ग्रन्थ प्रसिद्ध है उसका यूनानी नाम है 'पेरि इप्सुस'। शताब्दियों की उपेक्षा और विस्मृति के बाद इतावली विद्वान रोबेरतेल्लो ने इसे सन् 1554 में प्रकाशित किया। उसका अँगरेजी रूपान्तरण जॉन हाल ने सन् 1652 में 'ऑफ़ द हाइट्स ऑफ़ एलिक्वेंस' नाम से किया। कालान्तर में फ्रान्सीसी विद्वान बोलिवौ ने उसका फ्रेंच अनुवाद सन् 1674 में किया। तब साहित्यशास्त्रियों ने इस ग्रन्थ के महत्व को पहचाना और यूनान में अरस्तू के बाद इसके लेखक को दूसरा सिद्ध आलोचक माना। हिन्दी में अँगरेजी से उसका अनुवाद 'काव्य में उदात्त तत्त्व' नाम से डॉ. नगेन्द्र और नेमिचन्द्र जैन के संयुक्त सहयोग से प्रकाशित हुआ।

3. लोंजाइनस का परिचय

लोंजाइनस के विषय में विद्वान एकमत नहीं है। उसकी प्राचीनतम पाण्डुलिपि में तीन नाम दर्ज हैं – दिओन्युसियस या लोंजाइनस तथा दियोन्युसियस लोंजाइनस। इस पर बराबर विवाद होता रहा है कि ये तीनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं या तीन अलग-अलग व्यक्तियों के। स्कॉट जेम्स उसे पाल्म्यूरा का लोंजाइनस मानते हैं जो सीरिया की रानी जेनोबिया का मंत्री था जिसने ईसा के तीसरी सदी में 'आर्ट ऑफ़ रेहटारिक्स' नामक ग्रन्थ लिखा था। ग्रन्थ के अँगरेजी अनुवादक राबर्ट्स और एटकिन्स इससे सहमत नहीं हैं किन्तु 'द मेकिंग ऑफ़ लिटरेचर' के लेखक स्कॉट जेम्स ने 'पालम्यूरा का वीर' माना है। वाउचर उसे प्लूटार्क की रचना बताते हैं। कुछ विचारक इसे सिसली के कैलिसस की रचना मानते हैं। यद्यपि प्राचीन चिन्तकों के समय और रचना को लेकर ऐसे विवाद नए नहीं हैं किन्तु आज अधिकांश विचारक इस मत से सहमत हैं कि 'पेरि इप्सुस'- उदात्त तत्त्व 'ऑन द सब्लाइम' के लेखक यूनानी लोंजाइनस हैं तथा यह ग्रन्थ प्रथम या तीसरी सदी के बीच कभी रचा गया है।

4. 'पेरि इप्सुस'

'पेरि इप्सुस' का शाब्दिक अर्थ है 'औदात्य के विषय में'। औदात्य से अभिप्राय श्रेष्ठता या ऊँचाई से है। यह मूलतः भाषाणशास्त्र का ग्रन्थ है। भाषणशास्त्र भाषण सबन्धी शिक्षा का विज्ञान है जिसका उद्देश्य भाषण कला से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध अथवा प्रभावित करना था। यूनान प्रायद्वीपों का समूह समूह था। अपनी विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों के कारण वे एक राष्ट्र के रूप में विकसित न हो सके। वहाँ छोटे-छोटे नगर राज्य विकसित हुए। वहाँ उन्होंने प्राचीन गणतंत्रों की स्थापना की। उनमें एथेंस और स्पार्टा सर्वाधिक प्रमुख थे। ये गणतंत्र आपसी प्रतिस्पर्धावश अक्सर युद्ध करते थे जैसे भारत के देशी राजे-रजवाड़े। ऐसी गणतांत्रिक व्यवस्था में जनप्रतिनिधियों को तर्क संगत प्रभावी तरीके से अपनी बात से नागरिकों को वशीभूत करना होता था। अतः यूनान में भाषण कला का स्वतन्त्र विकास हुआ।

'पेरि इप्सुस' का विषय भाषण-कला है। चूँकि वक्ता और कवि दोनों का उद्देश्य अपने मन्तव्य को प्रभावी ढंग से संप्रेषित करना होता है। दोनों श्रोता-पाठक को सम्मोहित करना चाहते हैं। इसलिए यूनान में भाषण-कला और काव्य-कला का

विकास प्रायः एक साथ हुआ। यह ग्रन्थ सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध ग्रन्थ साठ पृष्ठों की लघु कृति है। इसमें चौआलिस छोटे-बड़े आकार हैं। उनमें लघुतम दो-तीन और अधिकतम सात-आठ पृष्ठों के हैं। इस ग्रन्थ में कई भाग लुप्त हैं कई खण्डित हैं। अपूर्ण एवं खंडित होने के बावजूद एलेन टेट ने इसे साहित्यलोचन की प्रथम पुस्तक तथा विम्साट एवं ब्रुक्स ने एक असाधारण लेख कहा है। जो कुछ भी उपलब्ध है उनमे भाषण-कला, गद्य, कविता, शैली आदि पर अनेक विचारणीय सिद्धान्त हैं और उनके पोषक प्रमाण प्रायः अकाट्य हैं। कृति के प्रथम भाग में तत्कालीन रचनाकारों के साहित्यिक दोषों का विवेचन है जो वाग्स्फीति, शब्दाडम्बर, निष्प्राण वाक्य-विन्यास, ढीली शैली और अलंकारों के निष्प्रयोजन को श्रेष्ठ साहित्य मानकर रच रहे थे। दूसरे भाग में श्रेष्ठ भाषा-शैली, उपयुक्त अलंकार-योजना,भावों की व्यापकता और गहराई, शब्द-चयन में कवि-प्रतिभा की भूमिका आदि के सन्दर्भ में सार्वकालिक नियमों का निदर्शन है जिसकी चर्चा अरस्तू के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पेरि पोइतिकेस' में यदा-कदा सुनायी देती है। इस योजना में आलोचना के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण तत्त्वों की उद्भावना भी दिखाई देती है जो आज भी स्वीकृत हैं और जिसका विकास परवर्ती दौर की आलोचना खासकर औद्योगिक क्रांति के बाद रोमैंटिक काव्यधारा एवं साहित्यलोचन में दिखाई देता है।

'पेरि इप्सुस' में लोंजाइनस ने उदात्त की परिभाषा दी है। उनका कहना है कि सभी महान कवि-लेखक , दार्शनिक-विचारक सामान्य मृत्युलोक के आम प्राणी नहीं होते। उदात्त एक ऐसा गुण है जो उन्हें सामान्य धरातल से ऊपर उठाकर विस्तृत मानस तक ले जाता है। उनकी मान्यता है कि श्रेष्ठ साहित्य का लक्ष्य पाठक के अन्दर हर्षातिरेक उत्पन्न करना है जिससे पाठक पार्थिव जगत से ऊपर उठकर आत्मविस्मृति की अवस्था में पहुँच जाता है। लेखक की शैली में यह गुण उसकी प्रतिभा और कलात्मक संयोजन से आता है। लोंजाइनस की मान्यता है कि श्रेष्ठ कला का सृजनकर्त्ता प्रतिभावान एवं कल्पनाशील व्यक्ति होता है जो अपनी कृति में ऐसी प्रभावोत्पादकता उत्पन्न कर देता है जिससे पाठक आन्नदातिरेक की मधुमती भूमिका में पहुँच जाता है। कवि का काम न तो वितंडावादी प्रबोधक की है और न शिक्षा-शास्त्रियों जैसी। इसके विपरीत कवि सिर्फ शब्द-साधक नहीं होता बल्कि अपनी प्रतिभा और कल्पना तथा अभिव्यक्ति की सम्मोहन-शक्ति ही उसे महान बनाती है। (जे.डब्ल्यू .एच. एटकिन्स, लिटररी क्रिटिसिज्म इन एंटिक्विटी, भाग-1,पृ.249)

एतदर्थ ध्यातव्य है कि यहाँ लोंजाइनस ने न तो प्रतिभा की लगाम खुली छोडी है न कल्पना की बागडोर ढीली की है। कला में उदात्त की इस सम्मोहन शक्ति को बकौल लोंजाइनस तीन बातें खंडित करती हैं। पहला है शब्दाडम्बर, दूसरा भावाडम्बर और तीसरा अभिव्यक्ति की बचकानी शैली। उनका तर्क है कि कल्पना और प्रतिभा को नियंत्रण में रखने के कुछ कायदे होते हैं जो कलाप्रसूत होते हैं और उसमे कला निहित होती है। ये कायदे दोनों को नियंत्रण में रखकर उन्हें उच्छृन्खल होने से बचाती है। इसलिए उच्छृन्खलता का निषेध और सहज-संयत अभिव्यंजना की रक्षा उदात्त के गुण हैं। उनके बीच एक का अभाव साहित्यिक रचना की श्रेष्टता को खंडित करती है।

उल्लेखनीय है कि कवि या दार्शनिक की स्थिति जितनी कमजोर होती है उतने ही भारी शब्दाडम्बर से वह उसे छिपाना चाहता है। उदाहरणार्थ, मुँह से आने वाले पानी को लार कहते हैं। इसके लिए संस्कृत में पांडित्यपूर्ण शब्द है, वक्त्रासव। यह अप्रचलित शब्द आश्चर्यचकित करता है किन्तु किसी गंभीर भावोद्रेक की क्षमता इसमें नगण्य है। काव्य में ऐसा प्रयोग प्रयोजनहीन है। लोंजाइनस इसे बचकानापन कहते हैं। लोंजाइनस की दृष्टि में वह पांडित्य प्रदर्शन है। उसे भावाडम्बर कहें तो कोई बुराई नहीं होगी।

इन्हीं विचारों के कारण लोंजाइनस को पहला रोमैण्टिक स्वछदन्तावादी समीक्षक कहा जाता है। रवीन्द्र सहाय वर्मा ने लिखा है कि पहले के आलोचकों ने कलात्मक पक्ष पर जोर दिया था। लोंजाइनस ने सर्वप्रथम प्रतिभा की महत्ता को स्वीकार किया और इस प्रकार स्वछन्दतावादी साहित्य-मीमांसा का सूत्रपात किया। (पाश्चात्य साहित्यलोचन और हिन्दी

पर उसका प्रभाव, पृ.80) वस्तुतः लोंजाइनस पहले आलोचक हैं जो आत्मतत्त्व पर बल देते हैं। कल्पना और प्रतिभा का सम्बन्ध इसी आत्मतत्त्व से है। टी.एस.एलिएट ने भी काव्य-सर्जना में व्यक्तिगत प्रज्ञा का महत्व स्वीकार किया है और सुमित्रानंदन पन्त ने कविता को 'कल्पना के कानन की रानी' कहा है। इस सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र लिखा है , "यद्यपि उन्होनें (लोंजाइनस) बड़े परिश्रम के साथ उदात्त की कला का विश्लेषण किया है, फिर भी उनके सम्पूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादन में आत्मतत्त्व का स्थान ही प्रमुख रहा है। प्रतिभा का प्राथमिक महत्व काव्य की सर्जना में अन्तःप्रेरणा का प्राधान्य, काव्य का आध्यात्मिक आधार काव्य प्रयोजन के रूप में काव्य उत्कर्ष पर बल, शैली के विभिन्न तत्त्वों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि तथ्य इस मत की पुष्टि के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं। " (डॉ. बच्चन सिंह , आलोचक और आलोचना, 21)

प्रतिभा से जुड़ा हुआ दूसरा महत्वपूर्ण तत्त्व काव्य की उदात्त शैली है। अरस्तू के अनुसार काव्य या त्रासदी के संगठनात्मक स्वरुप में ही आनन्द निहित होता है जो कथन के रूप में न होकर कार्यव्यापार अथवा घटना-योजना की तारतम्यता है। वही त्रासदी की आत्मा है। लोंजाइनस ने अरस्तू से थोड़ा अलग हटकर उदात्त पर बल दिया और उसे काव्य या त्रासदी की आत्मा कहा।

5. 'उदात्त' अर्थ और अवधारणा

'उदात्त' से अभिप्राय है परिष्कार, ऊपर उठाना या उंचाई पर ले जाना। एटकिन्स ने उदात्त के लिए 'एलिवेशन' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका परिष्कार या उंचाई के अलावा एक अर्थ 'गौरव' करना भी है। (पूर्वो.पृ.218) दूसरे शब्दों में साहित्य की ऐसी मनोरमता जो अपने व्यापक एवं सच्चे अर्थों में विशिष्ट के साथ गौरवपूर्ण भी हो, जो पाठकों की आवेगपूर्ण अनुभूतियों एवं भावजनित उन्मेष की लीला-स्थली (इक्सटैसी स्टेट) तक उठाने की गुणवत्ता रखती हो। लोंजाइनस ने तन्मयता के इसी लीला भाव को उदात्त कहा है। उन्होंने उदात्त के पांच स्रोत सुझाए हैं। उन्होंने एस्किलस, सोफोक्लीस, योरोपडीज एवं होमर जैसे महान ट्रेजडी लेखकों के उदहारण देते हुए समझाया है कि इनमें से कोई एक तत्त्व या स्रोत उदात्त का सृजन करने में पर्याप्त नहीं है। वह इन सबके संयुक्त एवं समरूप प्रभाव से उत्पन्न होता है। उदात्त के निर्माण में घटकों की वही भूमिका है जो शरीर के सन्दर्भ में अवयव अंगों की। सौंदर्य पूर्णता का नाम है। उदात्त संयुक्त प्रभाव का।

6. उदात्त के स्रोत

उदात्त के पांच स्रोत निम्न है : महान विचार, प्रबल अभ्यांतर भाव, अलंकार तथा छंद, भव्य शब्द-शिल्प विधान और प्रभावपूर्ण गरिमा। इनमे प्रथम दो का सम्बन्ध कवि की प्रतिभा से है। शेष तीन का सम्बन्ध काव्य कला से है। दूसरे शब्दों में प्रथम दो को विषयवास्तु और शेष तीन को रूप-विधान के छन्दर्गत रख सकते हैं। विचारों की प्रगल्भता एवं भावों की सघनता कवि के आत्मत्व के सर्वाधिक निकट हैं।

6.1. महान विचार

महान विचार से अभिप्राय यह है कि सर्जक मन को नैतिक, श्रेष्ठ और उच्चादर्शों एवं मूल्यों पर केन्द्रित करना, उसके मनन-चिन्तन से आत्मा को बांधे रखना क्योंकि उसके अभाव में न शैली उत्कृष्ट हो सकती है और न भावों की उदात्त अभिव्यंजना सम्भव है। महान विचार विशाल मन से जन्म लेते हैं, संकीर्ण एवं निःकृष्ट सोच से नहीं। दूसरा यह कि श्रेष्ठ साहित्यकारों की रचनाओं को पूर्णरूपेण हृदयंगम कर उनकी आत्मिक प्रेरणाओं से स्वयं को जोड़े रखना क्योंकि हीन विचारों तथा निम्न दर्जे के साहित्य ज्ञान से उच्च कोटि का साहित्य नहीं रचा जा सकता। दूसरे शब्दों में साहित्य की जीवन्त एवं उपयोगी परम्परा का ज्ञान अपेक्षित है। उल्लेखनीय है कि टी.एस.एलिएट ने भी मौलिक एवं प्रभावी सृजन के लिए होमर से लेकर आज तक की सम्पूर्ण योरोपीय साहित्यिक-सांस्कृतिक विरासत को हड्डियों एवं मज्जों में पचाकर लिखने पर जोर दिया है।

किन्तु महत्वपूर्ण यह है कि लोंजाइनस ने आत्मा की महानता और विचारों की उर्जस्विता को कुछ तो प्रकृति प्रदत्त माना है और कुछ उत्कृष्ट विचारों के परायण एवं पोषण द्वारा अर्जित भी। किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि कोरे अनुकरण से अभीष्ट की सिद्धि असम्भव है और न केवल अतीत के कवियों को अक्षरशः स्वीकार कर श्रेष्ठ साहित्य रचा जा सकेगा। अधिक से अधि नवसृजन की प्रेरणा के साक्षी होंगे। होमर आदि श्रेष्ठ त्रासदीकारों को पढने से प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। भारतीय काव्यशास्त्र में इसे 'काव्य-संस्कार' कहा गया है। यह संस्कार मूलतः प्रेरणाएं हैं जो श्रेष्ठ रचनाकार को मौलिक सृजन के लिए प्रेरित करती हैं, ऐसा कहकर लोंजाइनस एवं भारतीय काव्यशास्त्रियों ने कलाके क्षेत्र में हू-ब-हू नक़ल को निर्मूल कर दिया था। साथ ही आत्मिक सृजन के रूपों को खाने-खरचने, पहनने-ओढ़ने, व्यापार-मुनाफे आदि वाली भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयासों से अलग ही नहीं किया, दोनों के छन्दर को भी उन्होंने समझा दिया। कला के क्षेत्र में पुनरावृत्ति असम्भव है, यह मार्क्सवाद भी मानता है। महान रचनाकारों के आदर्शों,मूल्यों और मन्तव्यों को सहज रूप से आत्मसात कर उन्हें प्रेरणा का विषय बनाना एक बात है, उनकी नक़ल सर्वथा दूसरी बात है। इस मामले में लोंजाइनस आज भी आधुनिक प्रतीत होते हैं।

एक अन्य मामले में भी लोंजाइनस अरस्तू से ही नहीं रोमन अभिजातवाद की साहित्यिक सैद्धान्तिकी के जनक होरेस से भी भिन्न हैं। अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में में अनुकरण का अर्थ पुनर्सर्जन से अवश्य लिया है जिसमें निस्संदेह सर्जक की प्रतिभा और उसकी कल्पनाशीलता शामिल है, किन्तु इस पुनर्सर्जन में अतीत की रचनात्मक उपादेयता को शब्दांकित करना वह चूक गए हैं। दूसरी ओर होरेस का अभिजातवाद पूर्णतः परम्परान्मुख है। शास्त्रविहित मर्यादाओं से वह बंधा हुआ है जिसे अरस्तू ने पहले ही निर्धारित कर दिया था। लोंजाइनस नवसृजन के परम्परागत विधानों को नहीं मानते और अनुकरण के अरस्तूवादी सिद्धान्त को प्रेरणा तक सीमित रखते हैं चाहे उसकी अनुगूँज कितनी ही ढीली या क्षीण क्यों न हो। उस गूँज का समाकलन टी.एस. एलिएट ने बहुत बाद भिन्न देश-काल में यह कहकर कर दिया कि कोई भी कवि या सर्जक अपने आप में पूर्ण नहीं होता। उसकी महानता और पूर्णता अपने समकालीनों, पूर्ववर्ती एवं परवर्ती सर्जकों से तुलना-भेद और विशिष्टता के बीच होती है। कहने की जरुरत नहीं की लोंजाइनस के विचारों में रोमैंटिक साहित्य चिन्तन और उसके परम विरोधी विचारकों दोनों के चिन्तन के बीज मौजूद हैं।

निराला जी की एक काव्य-पंक्ति है, 'नुपुर के सूर मंद रहे जब तक न चरण स्वछन्द रहे'। इस पंक्ति में काव्य सिद्धान्त भी निहित है, अर्थात् जड़ताओं एवं रूढ़ियों से काव्य की मुक्ति। साहित्य का आधार मनुष्य का इन्द्रियबोध है, 'रूप-रस-स्पर्श-गंध-शब्द सब साथ-साथ इस भू पर'। ये विचारों की उर्जस्विता के भौतिक साधन हैं। उनके वांछनीय प्रभाव के लिए कृति को एक ऐन्द्रिक इकाई में में संगठित होना जरुरी है। यह लोंजाइनस के सौंदर्य-चिन्तन को वस्तुगत आधार देता है। स्वयं एटकिन्स ने स्वीकार किया है कि साहित्यिक कृति में वस्तुविन्यास की ऐंद्रिकता विचारों और भावों की उर्जस्विता की अभिव्यक्ति में सहायक होती है। (पूर्वो, पृष्ठ.224) 'पंचवटी-प्रसंग' में निराला जी ने लिखा है –

छोटे से घर की लघु सीमा में/ बंधे हैं क्षुद्र भाव प्रिय
सच है/प्रेम का पयोनिधि/उमड़ता है निस्सीम भू पर

6.2. प्रबल अभ्यांतर भाव

लोंजाइनस की मान्यता है कि श्रेष्ठ अनुभूतियों के उद्रेक से काव्य में शोभाशियता उत्पन्न होती है। सिर्फ श्रेष्ठ विचारों से श्रेष्ठ कविता नहीं बनती है। विचार और अनुभूति का मणिकांचन योग जरुरी है। चूँकि कला का आधार मनुष्य का इन्द्रियबोध है अतः वहाँ विचारधारा नहीं भावधारा प्रधान होती है। लोंजाइनस मानते हैं कि श्रेष्ठ साहित्य का सार्वभौम गुण है उदात्त कल्पना तथा भावों की व्यापकता और गहराई। उसमे आत्मोकर्ष की शक्ति होती है, उसमे प्रत्येक शब्द अपने साधारण अर्थ

की अपेक्षा कहीं अधिक गहरे अर्थ की व्यंजना करते हैं। इस मायने में निराला की 'राम की शक्तिपूजा' बीसवीं सदी का सर्वश्रेष्ठ ट्रैजिक काव्य है। वह राम के पराजय की त्रासदी का काव्य नहीं है न ही सिर्फ दुःख का काव्य है। वह दुःख के विरुद्ध राम के संघर्ष की शौर्यगाथा भी है। लोंजाइनस मानते हैं कि जहां अनुभूति संकीर्ण और भाव दूषित होंगे (भाव अर्थात मानव मन का वासनायुक्त संस्कार) लाभ-लोभ-ईर्ष्या-पाखण्ड-अनैतिकता होगी, वह मानव-आत्मा को कुंठित कर पतन की ओर ले जायेगी। निराला की पंक्ति है –'अन्यथा, जहां है भाव शुद्ध' वहीं 'साहित्य कला-कौशल प्रबुद्ध' का विवेक भी होगा। 'और भी फलित होगी वह छवि' क्योंकि 'भाव की चढ़ी पूजा उन पर' रोमैंटिक काव्य में काव्य चिन्तन में अनुभूति और भावना पर बहुत बल है। 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका में वड्र्सवर्थ-कॉलरिज ने कविता को एकांत में जन्मे भावों का स्वतःफूर्त उच्छलन कहा है। क्रौंच मिथुन में नार की हत्या व्याघ द्वारा होते देख आदि कवि वाल्मीकि का शोक्बद्ध ह्रदयश्लोक में फूट पड़ा था, 'शोकः श्लोकत्वमागतः'। वाल्मीकि ने भाव सौंदर्य को मानव-मन की श्रेष्ठ भावनाओं से जोड़ दिया और 'मा निषाद प्रतिष्ठाम त्वम्' मानवीय सह्रदयता,करुना और सात्विक क्रोध की मर्मवाणी बन गई। लोंजाइनस के चिन्तन में कालजीवी कला के गुण, प्रकृति एवं विन्यास की दबी हुई अनुगूँज सुनायी पड़ती है। कालजीवी कलाएं किसी शिक्षा या नियम से बंधी हुई नहीं होती हैं। अगर उनमे अमरत्व का गुण निहित होता है तो इसलिए कि उसमे कालों-काल मानव-ह्रदय को प्रभावित करने क्षमता होती है। यह शक्ति उदात्त से आती है। श्रेष्ठ साहित्य वही है जो अनेक बार पढ़े जाने के बावजूद उसकी चमक फीकी नहीं पड़ती। कदाचित इस तरह के आलोचनात्मक विचार लोंजाइनस के युग के लिए नवीन ही नहीं, आश्चर्यजनक भी हैं। कविता में भावाभिव्यक्ति का निषेध करने वाले टी.एस. एलिएट ने भी 'ट्रेडिशन एंड इंडिविजुअल टैलेंट' में माना है कि भावों से पलायन वही कर सकता है जिसके पास भावानुभुति हो।

6.3. अलंकार तथा छंद

लोंजाइनस ने अलंकार-प्रयोग की व्यापक समीक्षा में कुछ ऐसे विशेष अलंकारों की व्याख्या की है जो औदात्य को प्रमाणित करते हैं। और जिनके द्वारा उदात्त शैली अपना अभीष्ट सिद्ध करती हो। जिन प्रायोगिक साधनों द्वारा उदात्त शैली का निर्माण होता है उनमे अलंकार,शब्द, वाक्य-रचना तथा छंद प्रमुख हैं। लोंजाइनस ने अलंकार को काव्य शैली का आवयविक साधन माना है। माला में पिरोई गयी मोतियों की तरह ऊपर से आरोपित कोई अन्य तत्त्व नहीं। उदात्त शैली स्वाभाविक रूप से आलंकारिक होती है क्योंकि अलंकार कवि के मूल भावों में निहित होता है जो कवि के कलात्मक बोध का प्रतीक है। दूसरे शब्दों में , अलंकार बाह्य आभूषण न होकर शैली के प्राण स्वरुप होते है। शैली की श्रेष्ठता अलंकारों के कृत्रिम साधन या प्रयोग से नहीं बल्कि उदात्त शैली में उसका प्रयोग सहज रूप से होता है। लोंजाइनस ने उदात्त एवं अनुदात्त शैली में फर्क किया है। जिस प्रकार चांदनी रात में दिए की टिमटिमाहट फीकी पड़ जाती है और अमावस की रात वे दूने प्रकाश से चमक उठती है उसी प्रकार अलंकार की कृत्रिमता का आभास उदात्त शैली में नहीं के बराबर मिलता है और अनुदात्त शैली में वह प्रकट हो जाएगा। एटकिन्स ने लिखा है "अलंकार अलंकारशास्त्रियों के ऐच्छिक अथवा स्वकल्पित युक्तियाँ नहीं हैं जिन्हें यांत्रिक तरीके से लादा जाए। वे ऐसे साधन हैं जो स्वभावतः गंभीर भावों में छन्दर्भूत होकर चमत्कार उत्पन करते हैं तथा कलाकार की मानवीय प्रकृति और उसके कलात्मक बोध का प्रत्याखान करते हैं। " (पूर्वो.पृष्ठ.225) अन्यथा अलंकार बाह्याडम्बर है। सिर्फ चटकारा ऐसे चमत्कार से हिन्दी का रीति साहित्य अटा पडा है। उदाहरण के लिए 'रामचंद्रिका' में केशवदास ने सुबह के सूर्य की लाली को बन्दर के लाल मुख से उपिमत कर दिया और बिहारीलाल ने नायिका के वक्ष को पहाड़ से उप्मित कर दिया जो अब भुज लतिका में नहीं समा रहीं हैं।

लोंजाइनस अपने देश काल से आगे हैं। उनका यहाँ तक मानना है कि अलंकार वहीं सबसे प्रभावी ज्यादा होते हैं जहां यह तथ्य छिपा रहता है कि वे अलंकार हैं। उसके प्रयोग के लिए स्थान, रीति, परिस्थिति और अभिप्राय को ध्यान में रखना जरुरी है। एटकिन्स ने लिखा है कि "किन्तु सबसे विचारणीय बात यह है कि अलंकार अपने पूर्ण प्रभाव एवं चमत्कार तभी

प्रकट कर सकेंगे जब उनका प्रयोग एक शैली के रूप में होगा। साथ ही पुनरुक्ति के द्वारा भी गहरा प्रभाव उत्पन किया जा सकता है बशर्ते कि वे भावों की व्यग्रता के प्रतीक हों। कल्पनाशीलता और अतिशयोक्ति के विषय में भी यही मानना चाहिए कि वे वक्ता अथवा लेखक की आवश्यक अधीनता में हों। उनके कुलयोग से काव्य में उदात्त की प्राण प्रतिष्ठा की जा सकती है और उसकी कुल प्रभावान्विति वैसी ही होगी जैसा अनेक वाद्यों के सम्मिलित स्वर-सुरों तथा झंकार का होगा।

6.4. भव्य शब्द-शिल्प विधान

स्पष्टतः ये उदात्त के बाह्य तत्त्व हैं। स्वयं लोंजाइनस इन्हें 'कला की उपज' मानते हैं। उत्कृष्ट भाषा और शब्द विधान के छन्दर्गत शब्द चयन, रूपकादी का प्रयोग, भाषा की साज-समृद्धि आदि गुण आते हैं। लोंजाइनस ने विचार एवं पदविन्यास को अभिन्न माना है। उनका कहना है कि 'सुन्दर शब्द वास्तव में विचार की आभा होते है'। तुलसीदास ने 'गिरा अरथ जल वीचि सम। कहियत भिन्नन भिन्न' लिखकर दोनों की संश्लिष्टता की ओर संकेत कर दिया था। प्रभावकारी- 'सुन्दर शब्द ही वास्तव में विचार को विशेष प्रकार का आलोक प्रदान करते हैं। ' सुन्दर शब्दावली में सम्मोहन और चमत्कार दोनों की शक्ति होती है। उन्ही के द्वारा 'प्रत्यक्ष रूप में किसी रचना में सुन्दरतम मूर्तियों की भांति भव्यता, सौंदर्य, मार्दव, गरिमा, ओज और शक्ति तथा अन्य श्रेष्ठ गुणों का आविर्भाव होता है और मृतप्राय वस्तुएं जीवन्त हो उठती हैं।

उदाहरणार्थ अज्ञेय की 'सोन मछली' कविता- 'हम निहारते रूप/ कांच के पीछे/ हांफ रही मछली / रूप-तृषा भी /(और कांच के पीछे)/ है जिजीविषा। रामविलास जी ने इसे 'जड़ाऊ कविता' का श्रेष्ठ उदाहरण माना है। यह कविता जड़ाऊ ही नहीं टिकाऊ भी है क्योंकि इतने कम शब्दों में 'कांच के पीछे अपनी प्राण-रक्षा के लिए जल में थिरकती हुई सोन-मछली का चित्र एकदम आँखों के सामने नाच उठता है- चमकती हुई मछली की तरंगित आकृति मानों जिजीविषा शब्द के वलयित उच्चारण के साथ शब्द मूर्त हो जाती है।' सम्भव है इस रूप पर आँखें टिक जाएँ किन्तु उसके पीछे जो मछली की जिजीविषा है उसी में जीवन अभिव्यक्ति पाता है, यह न भूलना चाहिए। स्वयं अज्ञेय ने माना है कि 'रूप का यह आकर्षण भी वास्तव में जीवन के प्रति हमारे आकर्षण का प्रतिबिम्ब है।' लोंजाइनस के विचार-गाम्भीर्य, प्रबल अभ्यान्तर, भव्य शब्द एवं शिल्प-विधान आदि प्रतिमानों के दृष्टि उक्त कृति अनूठी है। इसके साथ ही लोंजाइनस ने सावधान कर दिया है कि "गरिमामय भाषा का उपयोग सर्वत्र नहीं करना चाहिए, क्योंकि छोटी-छोटी बातों को बड़ी-बड़ी और भरी-भरकम संज्ञा देना किसी छोटे बालक के मुंह पर पूरे आकारवाला त्रासद अभिनय का मुखौटा लगा देने के सामान है। " लोंजाइनस तद्भव शब्दों के प्रयोग को दोष नहीं मानते हैं क्योंकि उनका आधार लोक जीएवन का व्यापक अनुभव है। किन्तु तत्सम और तद्भव शैली का उपयोग प्रसंग के अनुरूप ही होना चाहिए। वही काव्य को उदात्त बनाते हैं।

6.5. प्रभावपूर्ण गरिमा एवं उर्जित रचना विधान

रूप छन्दर्वस्तु के अनेक घटकों को बांधता है और इस प्रक्रिया में वह छन्दर्वस्तु का हिस्सा बन जाता है। ठीक इसी तरह रचना-विधान के छन्दर्गत शब्दों, विचारों, कार्यों, सौंदर्य का उपकरणों-प्रतीक, बिम्ब, मिथक, रूपक अदि का संगुफन होता है। अर्थात रचना का प्राण तत्त्व है संगतिपूर्ण व्यवस्था, सामंजस्य और सन्तुलन जो उदात्त शैली के निर्माण के लिए अनिवार्य है। यह सामंजस्य ही कविता ,वक्ता और पाठक के बीच समभाव स्थापित करता है। जिस तरह मानव शरीर के अलग-अलग अंगों की अलग-अलग कोई अहमियत नहीं होती और वे सब मिलकर ही एक समग्र और सम्पूर्ण शरीर की रचना करते हैं , उसी तरह उदात्त शैली के तत्त्व एक-दूसरे से अलग होकर अर्थहीन हो जाते हैं। वे आपसी सहसंबद्धता में गरिमापूर्ण होते हैं।

तुलसीदास ने 'भावभेद रसभेद अपारा' को अन्योन्याश्रित बताया था। यह क्रिया अनायास स्वाभाविक रूप से सम्पन्न होती है, किसी जैविक क्रिया की तरह। ठीक इसी तरह कलात्मक रचना का अर्थ है , भाषिक सामंजस्य। श्रेष्ठ वक्ता-कविमें यह गुण प्रकृतिप्रदत्त होता है, जिसके सहारे वे "हमें भव्यता, गरिमा,ऊर्जा तथा अपने भीतर निहित प्रत्येक भाव की ओर प्रदत्त करता है और इस प्रकार हमारे मन के ऊपर अधिकार प्राप्त कर लेता है" (डॉ. नगेन्द्र, काव्य में उदात्त) यहाँ ध्यातव्य है कि लोंजाइनस इस गुण को प्रकृति की दें मानते हैं जो निश्चय ही एक रोमैन्टिक धारणा है। प्रतिभा कुछ तो प्रकृति प्रदत्त है और कुछ व्यक्ति सामाजिक व्यवहारों के बीच उसे विकसित करता है। एटकिन्स ने लिखा है कि " लोंजाइनस बराबर इसका ध्यान रखते हैं कि सामंजस्य केवल आनन्द और प्रेरणा का ही नहीं, उदात्त अनुभूतियों का भी नैसर्गिक साधन है जो एकाधिक संवेदनाओं को जगाकर वक्ता-लेखक की अनुभूतियों में साझीदारी से मनुष्य की आत्मा को प्रभावित करता है। " इसका नायाब उदाहरण है निराला जी की कविता 'सरोज-स्मृति'। (देखें मलयज का लेख 'सरोज-स्मृत और निराला', 'कविता से साक्षात्कार' पुस्तक में संकलित)

7. निष्कर्ष

कुल मिलाकर लोंजाइनस का काव्यचिन्तन अभिजातीय अनुशासन से मुक्ति है। लोंजाइनस ने लिखा है कि पूर्ववर्ती महानों का अनुकरण नहीं , उनसे स्पर्धा करनी चाहिए। सिर्फ शिल्प बल पर उन्हें अभिजात सिद्ध करने के लिए अपर्याप्त है। वहाँ काव्य कौशल के साथ अनुभव निष्ठा भी जुडी हुई है। अनुभव की यह निष्ठा से 'आह' और 'गान' जुड़े हुए हैं। 'वियोगी होगा पहला कवि..' वह यूरोप का पहला स्वछन्दतावादी चिन्तक है।

A Gateway to All Post Graduate Courses